वासुदेव बलवंत फड़के

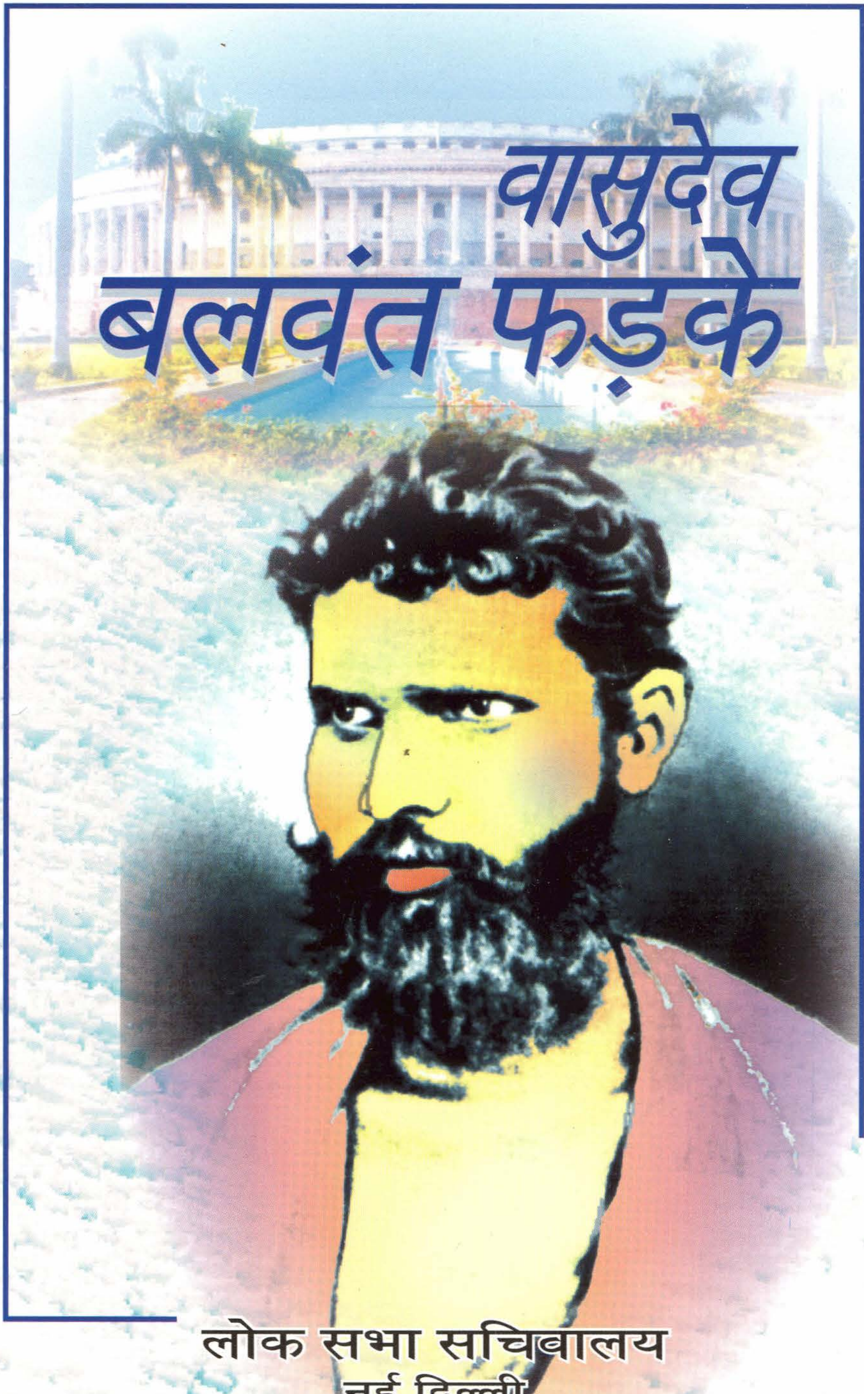

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
दिसम्बर 2004

वासुदेव बलवंत फड़के

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
दिसम्बर 2004

9 (3)–लार्डिस (हूज़ हू सेल II)/2004

© 2004 लोक सभा सचिवालय

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (ग्यारहवां संस्करण) के नियम 382 के अंतर्गत प्रकाशित तथा जैनको आर्ट इन्डिया, 13/10, डब्ल्यू.ई.ए. सरस्वती मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

आमुख

वासुदेव बलवंत फड़के आधुनिक भारत के आरंभिक वर्षों के उन क्रांतिकारियों में से हैं जिन्होंने अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए हथियार उठाए। इस व्यग्र आत्मा ने जो मशाल जलाई, वह भारतीय स्वतंत्रता के लिए संघर्ष की प्रचंड ज्वाला बन गई जिसमें असंख्य भारतीय तब तक अपने प्राणों की आहुति देते रहे जब तक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो गई। उनका अदम्य साहस, उच्चादर्शवाद और आत्मोत्सर्ग राष्ट्रीय जागरण में सहायक बने जिससे राजनीतिक जागरूकता की गति में तेजी आई। यह समीचीन है कि उन्हें राष्ट्रीय नेताओं और स्वतंत्रता सेनानियों के बीच स्थान दिया जाए। यह कृतज्ञ राष्ट्र 3 दिसम्बर 2004 को वासुदेव बलवंत फड़के की स्मृति में सम्मान व्यक्त कर रहा है जब भारत के माननीय उपराष्ट्रपति संसद भवन में उनके चित्र का अनावरण करेंगे। इस अवसर पर लोक सभा सचिवालय यह पुस्तिका प्रकाशित कर रहा है जिसमें वासुदेव बलवंत फड़के का जीवनवृत्त और उनके कुछ चुनिंदा फोटो दिए गए हैं।

हम वासुदेव बलवंत फड़के का चित्र भेंटस्वरूप प्रदान करने के लिए सर्वश्री श्रीराम दांडेकर और जयराज सलगांवकर के आभारी हैं। यह चित्र श्री सुहास बहुलकर द्वारा बनाया गया है।

यह प्रकाशन अग्रणी क्रांतिकारी वासुदेव बलवंत फड़के के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि है। हमें आशा है कि यह पुस्तिका सभी के लिए उपयोगी और ज्ञानप्रद सिद्ध होगी।

नई दिल्ली;
3 दिसम्बर, 2004

गुरदीप चन्द मलहोत्रा
महासचिव
लोक सभा

विषय-सूची

पृष्ठ

आमुख .... (i)

वासुदेव बलवंत फड़के—जीवनवृत्त

प्रारंभिक जीवन 1

नयी शक्ति 2

दक्षिण का अकाल 3

मुक्ति की रणनीति 4

तूफानी शुरुआत 4

पीछा और गिरफ्तारी 5

मुकदमा और काले पानी की सजा 6

श्रद्धांजलि 7

चित्रात्मक झांकी 9

वासुदेव बलवंत फड़के

-जीवनवृत्त-

वासुदेव बलवंत फड़के निस्संदेह अग्रणी भारतीय क्रांतिकारियों और स्वतंत्रता सेनानियों में से एक थे। उनका जीवन अपने बाद के अनेक शहीदों की भांति कड़ी मेहनत, संघर्ष और यातनाओं की गाथा है। जहां विद्वान और दिग्गज राजनीतिक नेता पूर्ण राजनीतिक स्वतंत्रता के हमारे लक्ष्य की घोषणा करने में हिचकिचा रहे थे, वासुदेव बलवंत ने खुले आम इसकी घोषणा कर दी। वह ऐसे पहले भारतीय नेता थे जो स्वराज के मंत्र का उपदेश देने और विदेशी शासन के विरुद्ध बगावत करने हेतु लोगों को प्रेरित करने के लिए गांव-गांव गए।

प्रारंभिक जीवन

फड़के पूना* के महान पेशवाओं की जाति के ही चितपावन ब्राह्मण थे। उनका परिवार कोंकण के रत्नागिरि जिले के एक गांव केलशी से था। सोलहवीं शताब्दी में उनके परिवारजन कोलाबा जिले में शिरधों चले आए। वर्ष 1818 में पेशवाओं की अंतिम पराजय के समय वासुदेव बलवंत के दादा अनंतराव के पास कर्नाला किले की कमान थी जहां से शिरधों दिखाई देता था, जिसे उन्होंने बिना लड़ाई के नहीं सौंपा। हालांकि 1818 में सैन्य प्रभुत्व समाप्त हो गया था पर 'सुबहदार' (सूबेदार) नाम उनके साथ जुड़ा रहा। वासुदेव बलवंत के दादा और पिता अपने क्षेत्र में सूबेदार ही कहलाते थे।

बलवन्तराव और उनकी पत्नी सरस्वतीबाई के यहां 4 नवम्बर 1845 को पुत्र वासुदेव का जन्म हुआ। वह मजबूत कद-काठी और बचपन से ही विद्रोही स्वभाव के थे। उन्हें दादा-दादी, जिनके यहां वह पले-बढ़े, का भरपूर प्यार मिला। उन्हें स्वच्छन्द जीवन पसंद था, उन्होंने कुश्ती, तलवारबाजी, घुड़सवारी सीखी और बाद में शस्त्रास्त्रों के प्रयोग में दक्ष हो गए परन्तु पुस्तकीय ज्ञान के प्रति उन्होंने कम रुचि दिखाई।

वासुदेव दस वर्ष के ही थे जब उनके दादा अनंतराव का निधन हो गया। इससे वासुदेव की जीवन शैली का भी अंत हो गया क्योंकि उनके पिता ने अब अपने पुत्र की स्कूल में उपस्थिति को अपना विशेष सरोकार बना लिया था। कल्याण के प्राथमिक विद्यालय में चार वर्ष व्यतीत करने के पश्चात् वह मुम्बई और पूना चले गए और कुछ वर्षों तक अंग्रेजी सीखी।

वर्ष 1859 में वासुदेव बलवंत ने साई बाई के साथ विवाह किया। वर्ष 1872 में एक संक्षिप्त बीमारी के बाद उनका निधन हो गया। वह अपने पीछे अपनी एकमात्र पुत्री मथुताई को छोड़ गई। वासुदेव ने 1873 में पुनः विवाह किया। उनकी दूसरी पत्नी गोपिकाबाई ने आभूषणों अथवा व्यक्तिगत आवश्यकताओं के विचार को ही त्याग दिया और अपनी निःस्वार्थता से अपने पति की सराहना की पात्र बनीं। वासुदेव बलवंत ने अपनी पत्नी के सद्गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वह महिलाओं की शिक्षा के

*सम्प्रति पुणे

मामले में आधुनिक विचारों के थे हालांकि उस समय यह प्रचलित नहीं था। उनकी उत्कट अभिलाषा थी कि बाई शिक्षित हों और कई बार वह अपने भाइयों के साथ उन्हें पाठ पढ़ाया करते थे। परिणामस्वरूप, बाई ने लिखना, पढ़ना और याद करके सुनाना सीख लिया; संस्कृत के धर्मग्रंथों को कंठस्थ कर लिया और अमरकोश को आसानी से सुना सकती थीं। शस्त्रास्त्र चलाने में कुशल वासुदेव बलवंत ने अपनी पत्नी को घुड़सवारी, लक्ष्य भेदन और तलवारबाजी में प्रशिक्षित किया।

जब वासुदेव ने अपनी शिक्षा पूरी की तो उनके परिवार में तीन बड़े आयोजन— उनके भाई का उपनयन संस्कार, उनकी बहनों के विवाह के भव्य आयोजनों से फड़के परिवार की आर्थिक स्थिति काफी कमजोर हो गई थी। इसलिए अपने पहले विवाह के शीघ्र बाद वासुदेव ने मुम्बई स्थित 'ग्रेट इंडियन पेनिन्सुला रेलवे' में क्लर्क के रूप में नौकरी कर ली। वह 'ग्रांट मेडिकल कालेज', जो कि भारत में सबसे पुराने चिकित्सा संस्थानों में से एक था, में अपनी नियुक्ति तक यह नौकरी करते रहे। वर्ष 1864 में उन्होंने 'सेना वित्त विभाग' (मिलिट्री फायनेंस डिपार्टमेंट) में दूसरी नौकरी कर ली और 1865 में इसके पूना कार्यालय में उनका स्थानान्तरण हो गया।

स्वभाव से, फड़के को अधीनस्थ के रूप में कार्य करना रास नहीं आ रहा था। श्रमसाध्य प्रकृति के कार्य, कार्यालय के नीरस अनुशासन और उनके वरिष्ठ विदेशी अधिकारियों के प्रभुत्व ने वासुदेव के युवा मस्तिष्क को उनके नियोक्ताओं के प्रति कटुता से भर दिया।

कुछ समय तक वासुदेव बलवंत फड़के ने धर्म की शरण ली। एक विद्वान पुजारी विनायकभात वर्जे के संरक्षण में उन्होंने सान्ध्य, पुरुषसूक्त, रूद्र, पयामना सहित प्राचीन धर्म ग्रंथों और ब्राह्मण मंत्रों की विद्वानोचित्त शिक्षा प्राप्त की और अपने प्रमुख आराध्य दत्तात्रेय की आराधना में लीन रहे। उन्होंने तत्व ज्ञान की खोज में अनेक संतों से भी भेंट की।

वर्ष 1870 की एक महत्वपूर्ण घटना वासुदेव फड़के के जीवन को नई दिशा प्रदान करने वाली सिद्ध हुई। अपने कार्यालय से छुट्टी मिलने में विलम्ब के कारण वासुदेव जीवन की अंतिम सांस ले रही अपनी मां के पास नहीं जा सके। उनके क्रोध और क्षोभ की सीमा न रही और उन्होंने कठोरतम शब्दों में अधिकारियों का प्रतिवाद किया। पुन:, उन्हें अपनी मां की बरसी की रस्म पूरी करने के लिए भी छुट्टी नहीं दी गई। इससे ब्रिटिश प्रशासन के प्रति उनकी कड़वाहट और बढ़ गई और भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए प्रयास करने का संकल्प और दृढ़ हुआ।

नयी शक्ति

ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह करने के वासुदेव बलवंत के निश्चय को वर्ष 1870 में दक्षिण के बदलते राजनीतिक परिदृश्य से औचित्य और प्रोत्साहन मिला।

1870 में पुणे की पुणे सार्वजनिक सभा ने भारत का पहला राजनीतिक जन-प्रदर्शन किया। ऐसा प्रमुख रूप से माधवराव रानाडे के मार्गदर्शन में किया गया था। रानाडे ने दिसम्बर 1872 में पुणे में 'नेशनल ट्रेड' पर अपना पहला भाषण दिया। सांख्यिकीय साक्ष्य और विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि विदेशी

वस्तुओं के अंधाधुंध और निर्बाध उपयोग के कारण भारत को कितनी राष्ट्रीय क्षति पहुंची है। उनके विद्वत्तापूर्ण भाषण से काफी नौजवान प्रभावित हुए जिनमें वासुदेव बलवंत भी थे।

रानाडे के भाषणों के साथ-साथ वासुदेव बलवंत के सार्वजनिक जीवन की शुरुआत हुई और इन भाषणों से उनके हृदय में देशप्रेम की ज्वाला प्रदीप्त हो उठी। दोनों समकालीन थे और विदेशी शासन द्वारा भारत के शोषण से घृणा करते थे। किंतु, दोनों की राजनैतिक विचारधारा भिन्न थी। राष्ट्र की इस दुरावस्था के लिए रानाडे का उपचार तो ब्रिटिश सरकार से निवेदन करने तथा याचिकाएं प्रस्तुत करने में सीमित रहा किंतु वासुदेव बलवंत फड़के की सोच की अभिव्यक्ति तत्काल सशस्त्र विद्रोह के रूप में हुई। भारतीय राजनीति में जहां रानाडे संविधानवाद के प्रणेता कहे जाते हैं, वहीं वासुदेव बलवंत फड़के को क्रांतिकारी विचारधारा का अग्रदूत माना जाता है। इस प्रकार इन दोनों को दो विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं का प्रतिनिधि कहा जा सकता है जिनका अवलंबन स्वतंत्रता-प्राप्ति तक परवर्ती पीढ़ियों के भारतीयों ने किया।

दक्षिण का अकाल

1870 से 1878 तक का काल दक्षिण में जनसामान्य के लिए बढ़ती मुश्किलों का समय था। राजस्व-संग्रह और अधिक सख्ती से किया जा रहा था और इसमें संशोधन करते हुए, लोगों से पुरानी दर पर पचास से सौ फीसदी अधिक राजस्व की मांग की जाने लगी। जबकि राजस्व की मांग में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हो रही थी, दक्षिण के जिले लम्बे समय से सूखे की समस्या का सामना कर रहे थे। दरकती धरती और सूखते झाड़-झंखाडों में मानव या पशु-पक्षियों के लिए कुछ भी नहीं बचा था। दक्षिण का पूरा प्रदेश वस्तुतः धूल का मैदान बन चुका था। खाद्यान्न की भयानक कमी से दामों में असाधारण वृद्धि हो गई। सरकार द्वारा शुरू किया गया अकाल-राहत कार्य समस्या को संभालने में नाकाम रहा। परिणामस्वरूप खाद्य का अभाव हो गया और हैजे तथा ज्वर जैसी बीमारियों ने महामारी का रूप धारण कर लिया। 1880 के अकाल आयोग के आकलन के अनुसार इस अकाल से आठ लाख जानें गईं। राजस्व-भुगतान और कृषि ऋणों के बंदोबस्त के लिए बने सरकारी नियम-विनियमों से साहूकारों को फायदा था और किसान अपने ही खेतों में कामगार मजदूर या फिर भूमिहीन की अवस्था में आ गए थे। कठोर वन-नियमों तथा चारागाह-भूमि में कमी कर दिए जाने के कारण ग्रामीण क्षेत्रों की निम्न जातियों तथा जनजातियों का कष्ट और भी बढ़ गया तथा पहले से ही व्याप्त हताशा और विषाद का वातावरण इससे और घना हो गया।

इस संत्रास ने वासुदेव बलवंत को हिला कर रख दिया। उन्होंने इसे विदेशी शासन का परिणाम कहा और इसे भारत के उद्योगों का नाशक व सिंचाई-व्यवस्था को मटियामेट करके आम आदमी के लिए रोटी-कपड़े के लाले पैदा करने का दोषी माना। उन्होंने अपनी आत्मकथा में अपने अनुभव को इस प्रकार व्यक्त किया है:

> ''रात-दिन इस पर और हजार तरह की अनेक कठिनाइयों पर विचार करके मुझ पर अंग्रेजों को भारत से खदेड़ देने की धुन सवार हो गई। मुझे कुछ और नहीं सूझता था। दिमाग में यही बात बैठ गई थी। मैं आधी रात में उठकर बैठ जाता

और अंग्रेजों को मिटा देने की सोचता; जैसे इस विचार ने मुझे पागल बना कर रख दिया हो।"

फड़के देश की दीन दशा पर सार्वजनिक रूप से भाषण देने लगे। उन्होंने दक्षिण के जिलों का दौरा किया और तीखे शब्दों में प्रशासन की आलोचना की। थोरो के शब्द दोहराते हुए, उन्होंने गर्जना की कि जब किसी शासन-व्यवस्था की तानाशाही या अक्षमता हद से ज्यादा और असहनीय हो जाए तो उसके प्रति आस्था समाप्त करना तथा उसका विरोध करना उचित है। उन्होंने देशवासियों से कहा कि 'स्वराज' ही सभी समस्याओं के निदान का एकमात्र उपाय है और उन्हें स्वतंत्रता के लिए प्रयास में जुट जाना होगा।

मुक्ति की रणनीति

ब्रिटिश राज के खिलाफ विद्रोह छेड़ देने का फड़के का आह्वान शिक्षित वर्ग को कपोल-कल्पनावत लगा। इसे देखकर फड़के रामोसी, कोली, भील और ढांगर जातियों की ओर मुड़े और उनका आह्वान किया। इन जातियों के लोग लगातार अकाल की स्थिति से बुरी तरह ग्रस्त थे और उन्हें यह आह्वान जैसे किसी मसीहा की पुकार लगा। फड़के ने लगभग तीन सौ विद्रोहियों का एक दल बनाया और भारत से अंग्रेजों को उखाड़ फेंकने की दिशा में कार्रवाई करने को उद्धत हुए।

इस कार्य के लिए वासुदेव बलवंत फड़के ने जो रणनीति बनाई वह थी—अपने सैनिकों को देश के विभिन्न भागों में भेजकर सरकारी कामकाज को ठप्प करना और अराजकता की स्थिति उत्पन्न करना। उन्होंने महसूस किया कि यदि देश के सभी हिस्सों में ऐसी ही स्थिति बन जाए तो इससे घबराहट फैल जाएगी। यदि डाक-तार व्यवस्था ठप्प कर दी जाए, रेलमार्ग बाधित कर दिए जाएं, तो एक स्थान से दूसरे स्थान तक संपर्क कट जाएगा और संचारहीनता की स्थिति बन जाएगी। उन्होंने सोचा कि इस तरह की अव्यवस्था से हजारों लोग उनके साथ आ जाएंगे और भारतीय गणराज्य की स्थापना संभव हो सकेगी।

तूफानी शुरुआत

इस विराट योजना को मूर्त रूप देने के लिए वासुदेव बलवंत फड़के को हथियारों और धन की जरूरत थी। उन्होंने इस क्रांति के लिए धन देने हेतु समृद्ध वर्ग से बातचीत की। फड़के ने उन्हें आश्वस्त किया कि यह धनराशि 'स्वराज' की प्राप्ति के लिए ली जा रही है और लक्ष्य की पूर्ति हो जाने के पश्चात् इसे वापस कर दिया जाएगा। लेकिन, धनवान वर्ग की प्रतिक्रिया ने उनकी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। वासुदेव बलवंत ने तब विचार किया:

"अकेले, साधन का महत्व ही क्या रहता है। यदि ये रईस लोग स्वराज के लिए स्वेच्छापूर्वक धन नहीं देते तो क्यों न इन्हें लूटकर ही धन एकत्र किया जाए?"

इस प्रकार, वासुदेव बलवंत फड़के के दल ने युद्ध की तैयारी के संसाधन जुटाने के उद्देश्य से, ग्राम्य क्षेत्रों के धनाढ्य वर्ग को लूटना और उनकी संपत्ति का हरण करना आरंभ कर दिया। फड़के के त्रस्त और दुर्दशाग्रस्त अनुयायियों के लिए इससे

बढ़कर स्वागतयोग्य बात भला और क्या होती, जो इसे अपना पुराना हिसाब चुकता करने का एक बढ़िया मौका समझ रहे थे। इस तरह का पहला हमला 23 फरवरी 1879 की शाम हुआ, जब फड़के ने एक बड़े दल के साथ पुणे जिले के धमारी गांव पर धावा बोला। मारवाड़ी साहूकारों के घरों में लूट-पाट की गई और उनकी बहियां जला दी गईं। धमारी गांव से यह दल दडवी, निंबगांव, पनमाला और जेजूरी गांवों की ओर बढ़ा। 5 मार्च को वल्हे गांव पर धावा हुआ जिसके बाद दल ने भोर क्षेत्र में प्रवेश किया और हरानई, मंगडारी, सावरगांव और चांदखेड़ गांवों के धनकुबेरों को लूटा।

फड़के ने यह लड़ाई एक बड़े नैतिक उद्देश्य को सामने रखकर छेड़ी थी। उन्होंने अपने आदमियों को सख्त आदेश दे रखे थे कि धावे के वक्त स्त्रियों और बच्चों को बिल्कुल भी परेशान न किया जाए।

जैसे ही वासुदेव बलवंत के इस विद्रोह की खबरें अखबारों में प्रकाशित हुईं, देशभर का राजनैतिक वातावरण गरमा गया। भारतभर के लोग दक्षिण में इस उथल-पुथल के वास्तविक कारणों का पता लगाने के लिए व्यग्र हो उठे। तब तक सरकार खतरे को भांप चुकी थी और उसने विद्रोहियों पर काबू पाने के लिए एक विशेष कार्यबल बना लिया। इससे विचलित हुए बिना फड़के ने मई में एक घोषणा की जिसमें सरकार को यह चेतावनी दी गई थी कि यदि वह सस्ता खाद्यान्न व रैयतों को रोजगार उपलब्ध नहीं कराती, आम कर का बोझ कम नहीं करती और अपने यूरोपीय अफसरों का वेतनादि नहीं घटाती तो इसके गंभीर परिणाम भुगतने को तैयार रहे। सरकार ने फड़के को बंदी बनाने के लिए जो इनाम रखा था, उसका प्रतिकार करते हुए फड़के ने गवर्नर और अन्य अफसरों के सिर पर अपनी ओर से इनाम देने की घोषणा की।

पीछा और गिरफ्तारी

वासुदेव बलवंत ने अपनी यह प्रसिद्ध घोषणा मई 1879 के पहले सप्ताह के आसपास की थी। यह एक ऐसा दस्तावेज था जिसमें भारत का आर्थिक शोषण करने की ब्रिटिश नीति की भर्त्सना की गई थी और रैयतों को उनके स्वाभाविक अधिकार के रूप में आर्थिक राहत प्रदान करने की मांग की गई थी। भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम के दौरान, ब्रिटिश सरकार को अपनी तरह की यह पहली खुली चुनौती थी।

सरकार ने अब विद्रोहियों के नेता वासुदेव बलवंत फड़के को पकड़ने के लिए जमीन-आसमान एक करना शुरू किया। पुलिस के डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट, मेजर डैनियल को, जिसे संयोगवश फड़के के विद्रोहियों का नेता होने का पता चल गया था, फड़के का पता लगाने और गिरफ्तार करने का जिम्मा सौंपा गया। डेनियल इस प्रांत के चप्पे-चप्पे से भली-भांति परिचित था।

इसी बीच, वासुदेव बलवंत को पता चला कि रामोसिस, रामोसियों, जो उनके अनुयायी थे, ने उन्हें धोखा दे दिया है। उनका एकमात्र सरोकार उन्हें मिले लूट से था। उनकी अपने नेता की शानदार योजना में कोई दिलचस्पी नहीं थी। रामोसियों से मोह भंग होने के बाद फड़के का ध्यान दक्षिण भारत की ओर गया। उन्होंने निजाम

के साम्राज्य का भ्रमण किया और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए रोहिल्लों और अरबों का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की।

मेजर डैनियल ने सतर्कता आदेश जारी कर दिया और पूरे प्रदेश में सुरक्षा के उपाय कड़े कर दिए। तथापि, ये उपाय निरर्थक साबित हुए। वासुदेव बलवंत का आतंक धीरे-धीरे पूरे महाराष्ट्र में छा गया और उनके नाम की गूंज पूरे देश में सुनाई पड़ने लगी। उन्होंने प्रत्येक मराठा परिवार में स्वयं को एक किंवदंती के रूप में स्थापित कर लिया।

पुलिस, जो फड़के की तलाश में थी, को उनके दक्षिण में होने का पता लगा। मेजर डैनियल 17 जुलाई 1879 की शाम हैदराबाद पहुंचे। वह सीधे ब्रिटिश रेजिडेंसी पहुंचे और सर रिचर्ड मीड से परामर्श किया। सर मीड ने निजाम को डैनियल के वहां आने के उद्देश्य की जानकारी दी। ब्रिटिश सरकार के सबसे भरोसेमंद मित्र निजाम तुरंत ही वासुदेव बलवंत फड़के की खोज में जुट गए। अंततः फड़के 20 जुलाई 1879 की रात बीजापुर जिले में देवार नवदगी में पकड़े गए।

मुकदमा और कालेपानी की सजा

3 नवम्बर 1879 को वासुदेव बलवंत फड़के पर अपने चौदह साथियों के साथ पुणे में मुकदमा चलाया गया। उन पर डकैती डालने, डकैतों के साथ महारानी के विरुद्ध युद्ध करने का षड्यंत्र रचने, युद्ध करने के लिए आदमी और शस्त्र जमा करने और सरकार के विरुद्ध असंतोष की भावना भड़काने का आरोप था। उनके विरुद्ध साक्ष्य के तौर पर उनकी अपनी डायरी और आत्मकथा, जो उन्होंने कुछ माह पहले ही श्रीशैला मल्लिकार्जुन में निवास के दौरान लिखी थी, यही दो महत्वपूर्ण दस्तावेज पेश किए गए।

काका जोशी के नाम से प्रसिद्ध गणेश वासुदेव जोशी न्यायालय में फड़के का मुकदमा लड़ने के लिए स्वयं आगे आए और ऐसा करके उन्होंने अदम्य साहस का परिचय दिया। वासुदेव बलवंत ने न्यायालय के समक्ष अपने बयान में साफ-साफ कहा:

> "ब्रिटिश शासन के कारण ही भारत भुखमरी से होने वाली मौतों का शिकार हो रहा है। हमारे उद्योगों को बर्बाद किया जा रहा है। इंग्लैंड से आयातित वस्तुओं पर करों से छूट है ताकि हम अपने देश में कोई उद्योग न चला सकें.... लोगों को संपूर्ण विनाश से बचाने का एक ही तरीका मुझे सूझा है और वह है, ब्रिटिश शासन से मुक्ति। दिन-रात मैं एक ही प्रार्थना करता हूं और एक ही विचार मेरे मन में आता है। हे भगवान, भले ही मेरे प्राण भी चले जाएं, मेरा देश स्वतंत्र हो जाए, मेरे देशवासी प्रसन्न हों। इसी उद्देश्य से मैंने हथियार उठाए हैं, एक सेना तैयार की और ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। आज यह प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है। मैं इसमें सफल नहीं हो सका। किंतु किसी दिन कोई न कोई जरूर सफल होगा। मेरे देशवासियो, मेरी असफलता के लिए मुझे क्षमा करना।"

किंतु सभी आरोप उनकी अपनी डायरी, आत्मकथा और उनकी स्वीकारोक्तियों तथा अभियोजन पक्ष द्वारा बुलाए गए गवाहों के बयानों से पर्याप्त रूप से सिद्ध हो गए।

जूरी द्वारा उन पर लगाए आरोपों के तहत दोषी करार दिए जाने के बाद न्यायाधीश मि. न्यूनहैम ने उन्हें आजीवन कालेपानी की सजा दी। उन दिनों आजीवन कालेपानी की सजा मृत्युदंड से भी ज्यादा कष्टदायी थी।

इस सजा के विरुद्ध हाईकोर्ट में की गई अपील ठुकराए जाने के बाद वासुदेव बलवंत को अंडमान निर्वासित किए जाने का रास्ता साफ हो गया था। लेकिन अंडमान में 1857 के युद्ध बंदियों को रखा गया था। वहां कैदियों की संख्या बहुत अधिक थी और नियम यह था कि कुछ निश्चित अवधि के बाद ही उस द्वीप से कैदियों को छोड़ा जाना था। सरकार को आशंका थी कि फड़के को दी गई सुविधाओं का फायदा उठाकर कैदियों की सहायता से अंडमान में समस्याएं उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए निर्वासन की जगह अंडमान द्वीप से बदलकर अदन का किला कर दिया गया जो ज्यादा सुरक्षित, कम विस्तृत और मजबूत था। यहां कैदियों की संख्या कम थी और यह बंबई सरकार के सीधे क्षेत्राधिकार में था।

जेल में मुसीबतों के बावजूद, वासुदेव बलवंत की विचारधारा विद्रोही और निर्भीक बनी रही। लगभग छह माह बाद उन्होंने जेल से भागने की अपनी योजना पर कार्य करना शुरू कर दिया। अक्तूबर 1880 के प्रारंभ में फड़के ने जेल से भागने की अपनी योजना को अंतिम रूप दिया। 12 अक्तूबर 1880 को उन्होंने अपनी योजना को कार्यरूप दिया और शीघ्र ही महीनों की कैद के बाद आजादी की खुली हवा में सांस लेते हुए अवरोध गेट से बाहर निकल गए। तथापि, इनकी मुक्ति की अवधि सीमित ही रही। अन्य देश से गुजरते हुए वह शीघ्र ही खोज लिए गए और पकड़ लिए गए।

अगले सवा दो वर्षों में वासुदेव बलवंत के साथ अमानुषिक व्यवहार किया गया। अधिक कार्य करने की पीड़ादायक आवश्यकता और बंद अकेले निर्वासन का उन पर असर हुआ और वह 1881 के मध्य में क्षय रोग से ग्रस्त हो गए। ऐसा स्वास्थ्य होने पर भी उन्होंने अपने शरीर को बेड़ियों से मुक्त कराने और जीवन दशा को बेहतर बनाने की मांग पर जोर देते हुए आमरण अनशन किया।

वासुदेव बलवंत की हालत 17 फरवरी 1883 को और बिगड़ गई। उस दुर्भाग्यपूर्ण दिन की सुबह डाक्टरों ने उनकी हालत सुधरने की सारी आशाएं छोड़ दीं। शाम 4 बजकर 20 मिनट पर भारत के अग्रणी क्रांतिकारी का अदन के किले में देहावसान हो गया।

श्रद्धांजलि

वासुदेव बलवंत फड़के भारतीय क्रांतिकारियों और राष्ट्रवादियों के लिए सतत् प्रेरणास्रोत बने रहे और उन्होंने कम से कम तीन पीढ़ियों तक राष्ट्रीय संग्राम की ज्वाला जलाए रखी। तिलक के राष्ट्रीय संग्राम में आने से पूर्व ब्रिटिश शासन के विरुद्ध पहले विद्रोही होने के कारण वह महान उदारवादी और संविधानविद् डा. एम.आर. जयकर

से लेकर भारतीय क्रांतिकारियों के प्रिंस स्वातंत्र्यवीर सावरकर तक विभिन्न राजनीतिक विचारधारा से संबद्ध लगभग सभी महान नेताओं और राजनीतिक रूप से सचेत लोगों के स्वाभाविक रूप से राष्ट्रीय नायक थे।

'भारत के स्वतंत्रता संग्राम' के अपने प्राक्कथन में पश्चिम बंगाल के तत्कालीन माननीय मुख्यमंत्री, श्री ज्योति बसु ने टिप्पणी की:

> ''भारत में ब्रितानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष दो अलग-अलग तरीकों से अभिव्यक्त हुआ: एक था अहिंसक जन आंदोलन और दूसरा हिंसक संघर्ष। इन्हीं दोनों रूपों में हुए संघर्षों के परिणामस्वरूप ही देश को आजादी मिली। स्वाभाविक है कि जब भी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास लिखा जाएगा तो इन्हीं दोनों तरीकों को पर्याप्त महत्व दिया जाएगा। इन दोनों संघर्षों में से किसी एक को कम महत्व देने का कोई भी प्रयास पूर्णत: गलत और भ्रामक है....''।

वासुदेव बलवंत के रोमानी कारनामों की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ और उन्होंने उनका उपयोग अपनी रचनाओं में किया। उनके जीवन पर आधारित नाटक मराठी रंगमंच पर खेले गए और कई वर्षों तक महाराष्ट्र में इन नाटकों ने काफी लोकप्रियता अर्जित की।

वासुदेव बलवंत फड़के की याद में 14 नवम्बर 1940 को शिरधों में एक शानदार समारोह में स्मारक स्तम्भ का अनावरण किया गया। 1 फरवरी 1943 को सावरकर शिरधों आए। स्मारक स्तम्भ के सामने भाषण करते हुए उन्होंने कहा था, ''हमारे हृदय में जलती भारतीय स्वतंत्रता की अभिलाषा की मशाल की लौ वासुदेव बलवंत के हृदय में जलती मशाल से प्रदिप्त हुई थी। स्तंभ के शीर्ष पर जलती पावन मशाल उस शहीद का उपयुक्त स्मारक है। जब भी आपको प्रेरणा की आवश्यकता हो और कोई मार्ग न सूझता हो तो यह दीप आपके हृदय को आलोकित करेगा और आपका पथ प्रदर्शन करेगा।''

पूरे भारत की सभी भाषाओं के प्रमुख समाचार पत्रों ने वासुदेव बलवंत का जीवनवृत्त प्रकाशित किया और उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि दी। मुम्बई से प्रकाशित साप्ताहिक 'ब्लिट्ज' ने एक संपादकीय में लिखा ''....जब भी स्वतंत्र भारत में शहीद गैलरी का निर्माण होगा तो वहां वासुदेव फड़के को उपयुक्त स्थान अवश्य दिया जाएगा..''। द फोरम ने लिखा, ''...हालांकि फड़के का नाम महाराष्ट्र के अन्य महान सपूतों तिलक, रानाडे और गोखले—के नाम के आगे कम महत्व का हो गया फिर भी फड़के का नाम कालक्रम में पहले आता है। वह ऐसे समय अपनी मातृभूमि के लिए जिए और उसके लिए संघर्षरत रहे, जब भारत में राष्ट्रवाद का कोई अर्थ ही नहीं था। जब उनका निधन हुआ तब कांग्रेस की स्थापना भी नहीं हो पाई थी। हालांकि, उनकी राख उनकी मातृभूमि से बहुत दूर विराजमान है, पर उनकी आत्मा उन महान भारतीयों के स्वर्ग में शामिल हो गई है जो भारतीय इतिहास की यात्रा में अपने पदचिह्न छोड़ गए हैं।''

जब तक मातृभूमि के शहीदों के लिए भारतीय राष्ट्रवाद और राष्ट्रीय कृतज्ञता जैसे शब्द विद्यमान रहेंगे, तब तक वासुदेव बलवंत फड़के का नाम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में अनुपम आभा के साथ जगमगाता रहेगा।

वासुदेव बलवंत फड़के

- चित्रात्मक झांकी -

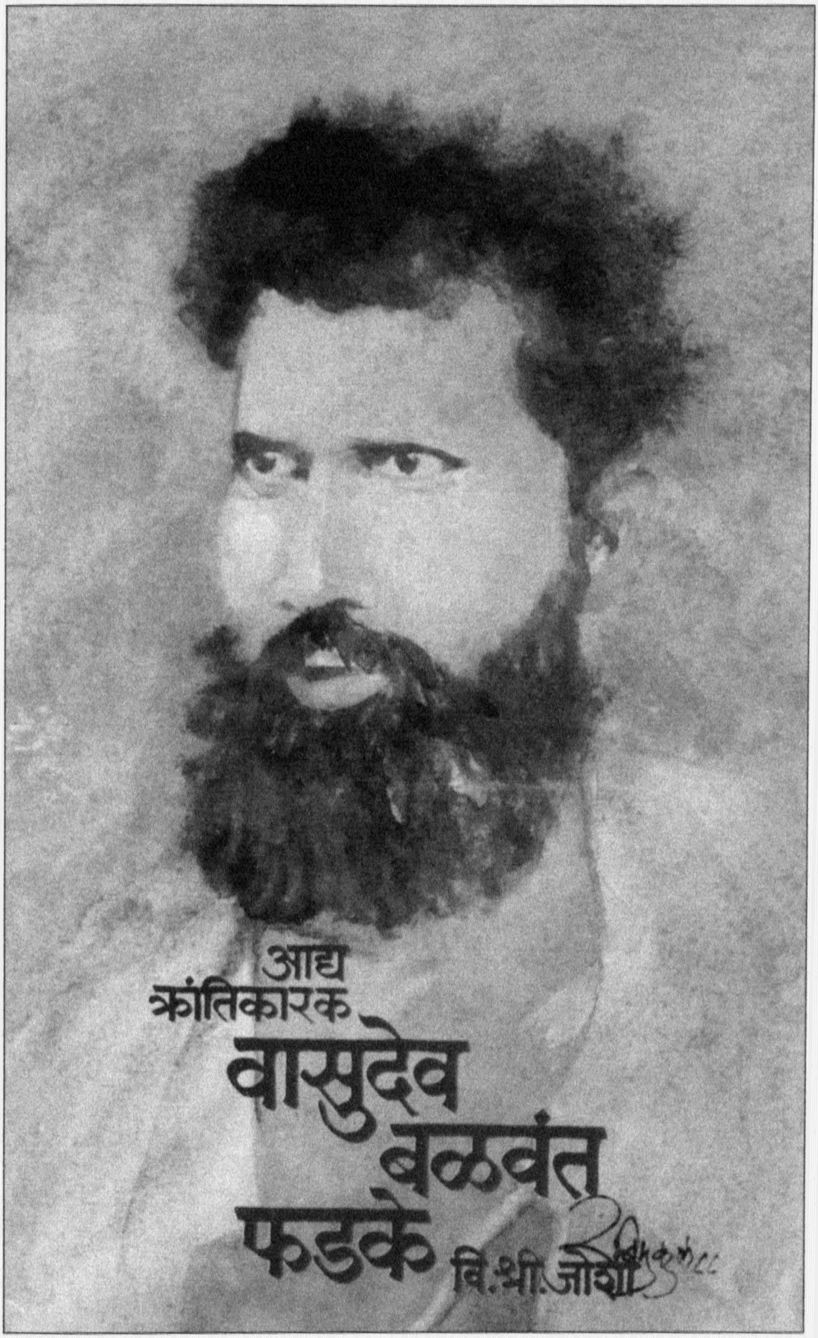

वासुदेव बलवंत फड़के

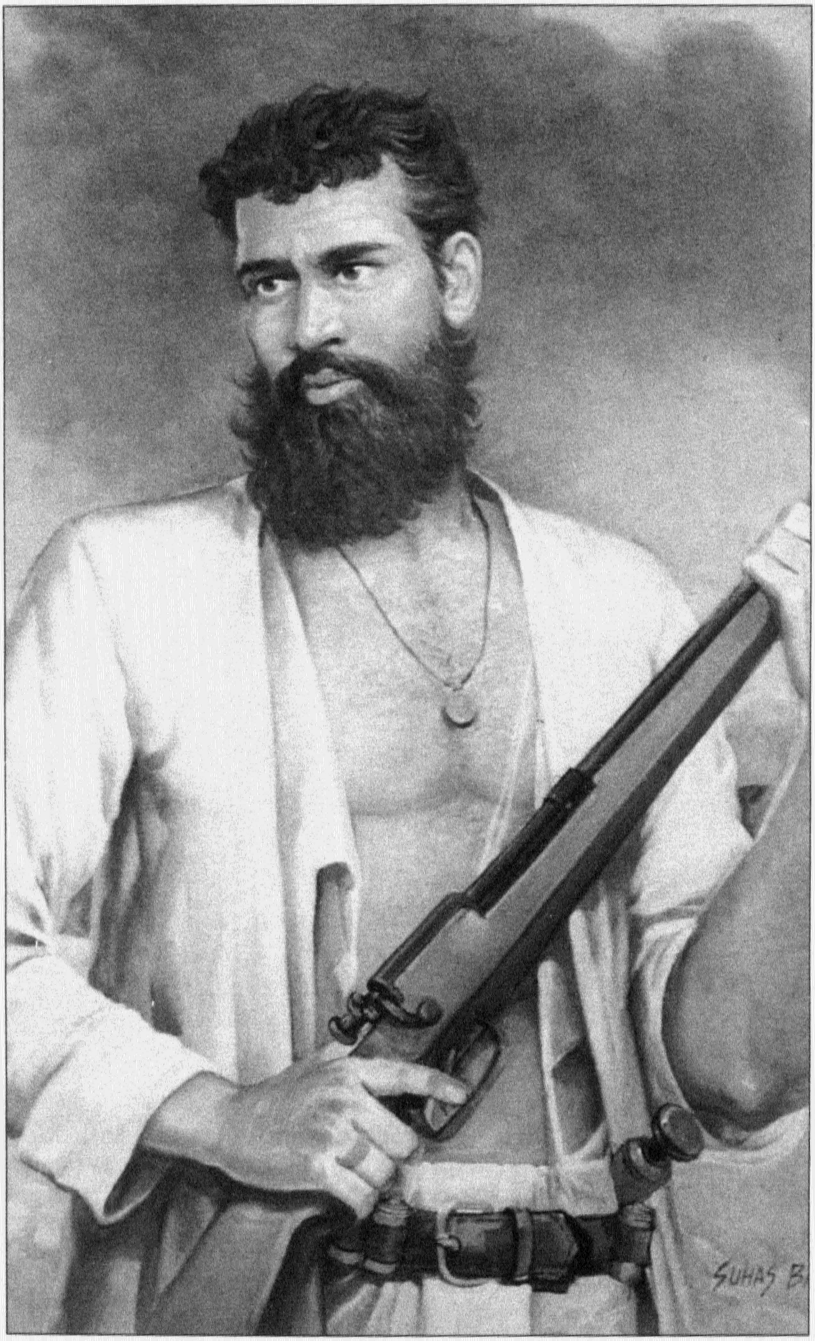

वासुदेव बलवंत फड़के

पांडुरंग बलवंत फड़के–वासुदेव बलवंत फड़के के पिता

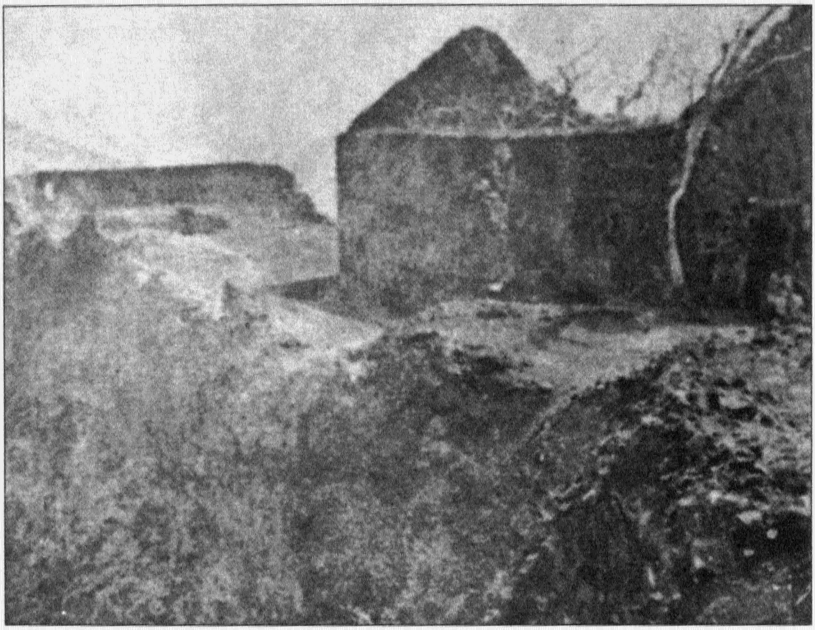

शिरधों के निकट कर्नाला की गढ़ी जिसका स्वामित्व वासुदेव बलवंत फड़के के दादा अनंतराव के पास रहा।

वह घर जहां वासुदेव बलवंत का जन्म हुआ

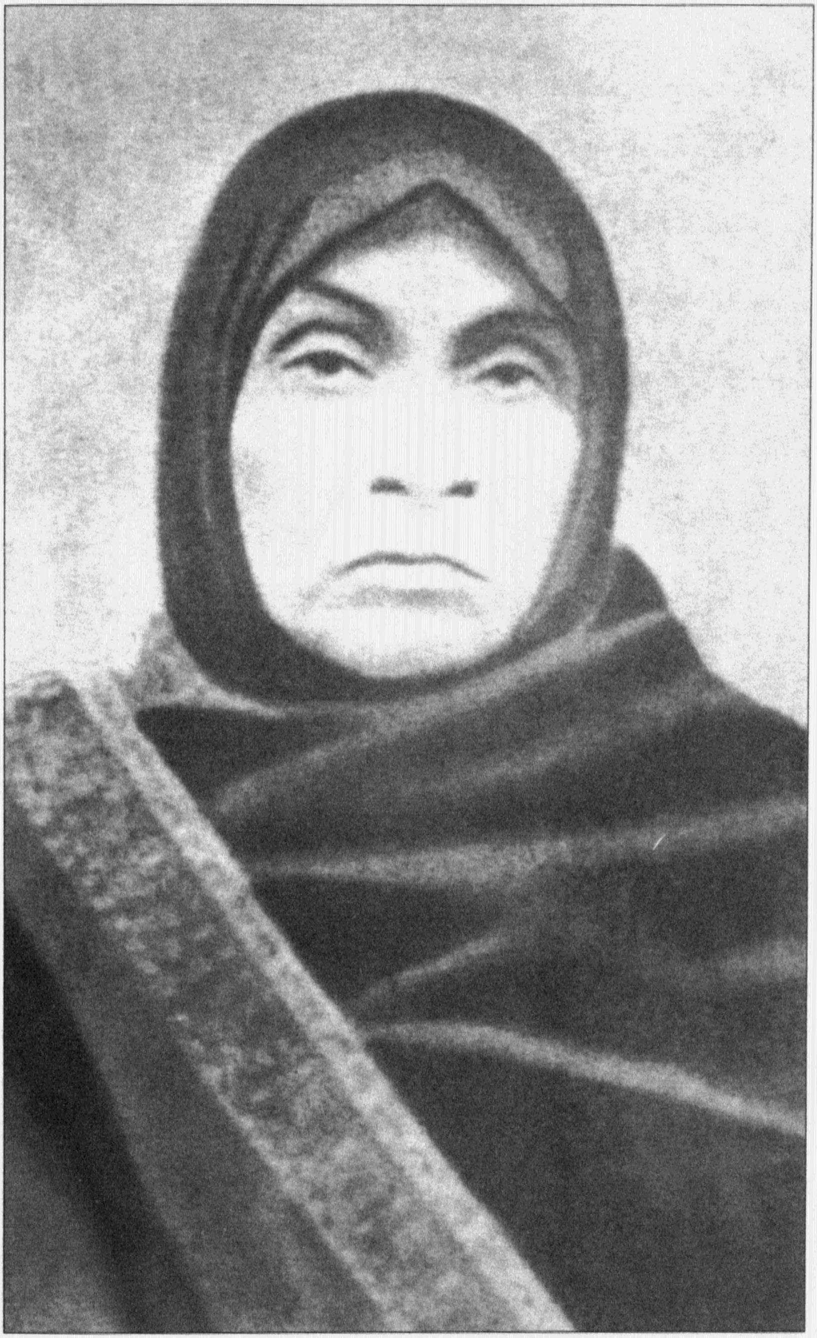

वासुदेव बलवंत फड़के की पत्नी गोपिकाबाई फड़के

वासुदेव बलवंत फड़के के कुल देवता श्री दत्ता

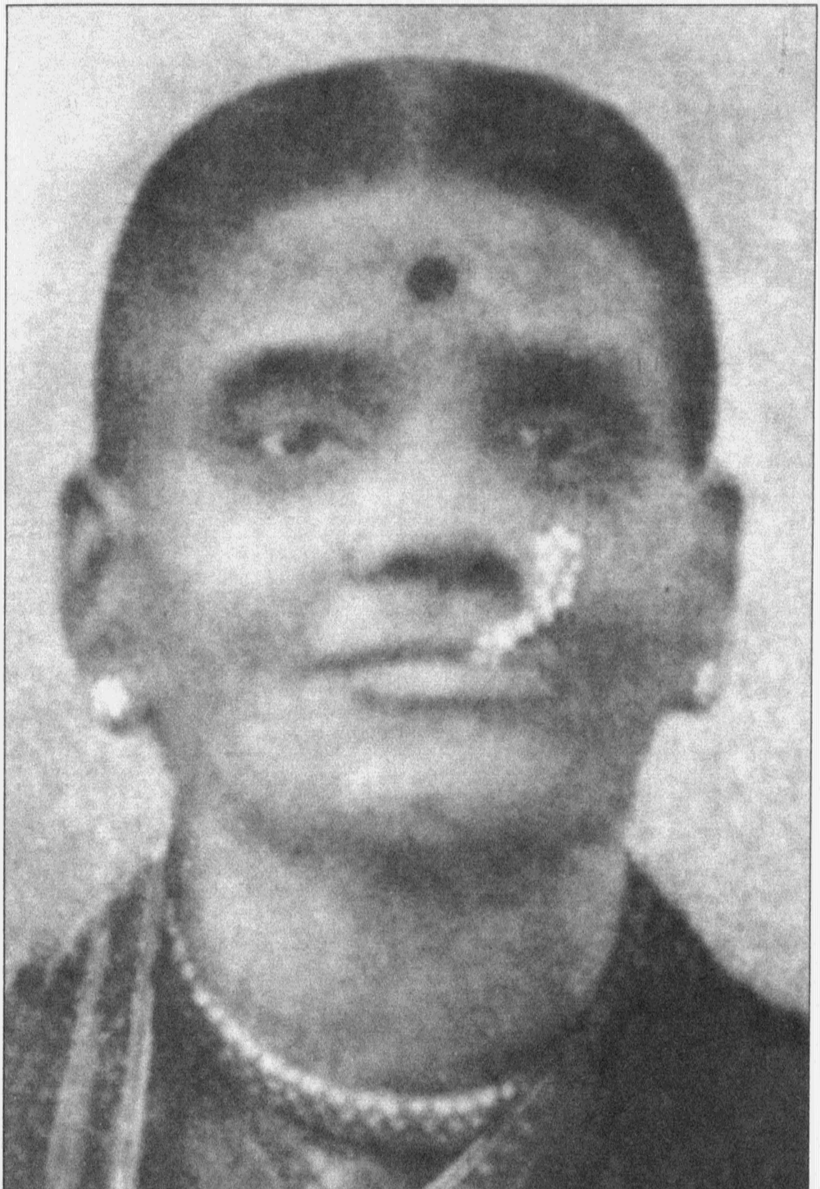

मथुताई फड़के–वासुदेव बलवंत फड़के की इकलौती पुत्री

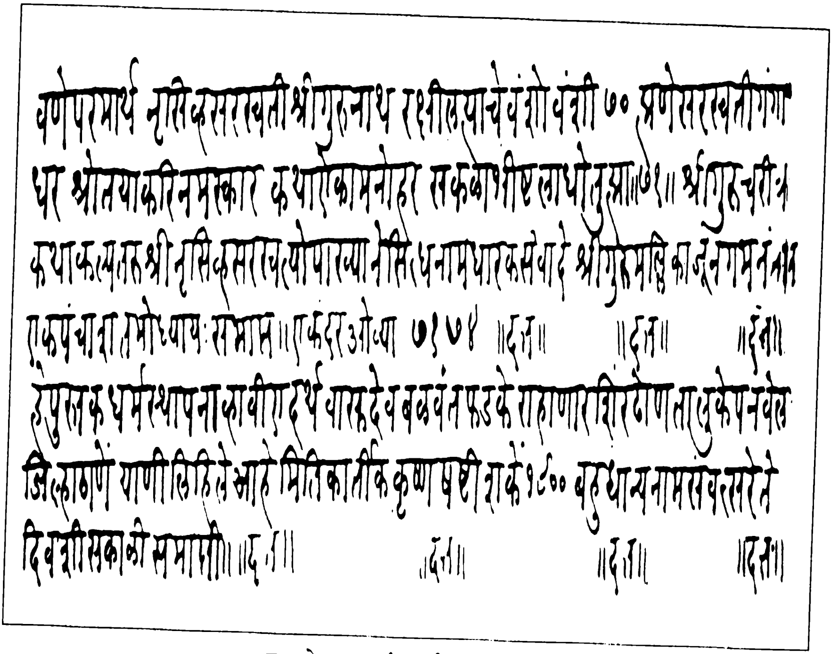

वर्णे परमार्थ नृसिंहसरस्वती श्रीगुरुनाथ रक्षील्याचे वंशो वंशी ७० श्रवणे सरस्वती गंगा
धर श्रोतयांसि नमस्कार कथा ऐका मनोहर सकळाभीष्ट लाधो तुह्मा ॥७१॥ श्रीगुरुचरित्र
कथा कल्पतरु श्रीनृसिंहसरस्वत्योपाख्याने सिद्धनामधारक संवादे श्रीगुरुमहिमा काजून गमनं नाम
एकपंचाशत्तमोध्याय: समाप्त ॥ एकंदर ओव्या ७१७४ ॥दंत॥ ॥दंत॥ ॥दंत॥
हे पुस्तक धर्मस्थापनार्थी विधाग्रार्थ वासुदेव बळवंत फडके राहाणार शिरढोण तालुके पनवेल
जिल्हा ठाणें यांणी लिहिले आहे मिति कार्तिक कृष्ण षष्ठी शके १८०० बहुधान्य नाम संवत्सरे ते
दिवशी सकाळी समाप्ती ॥दंत॥ ॥दंत॥ ॥दंत॥ ॥दंत॥

वासुदेव बलवंत की हस्तलिपि

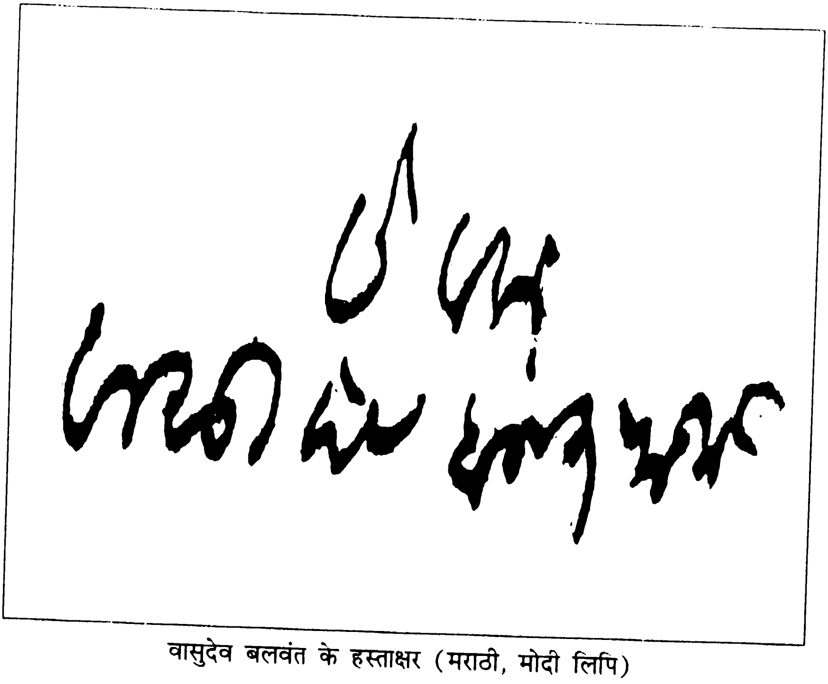

वासुदेव बलवंत के हस्ताक्षर (मराठी, मोदी लिपि)

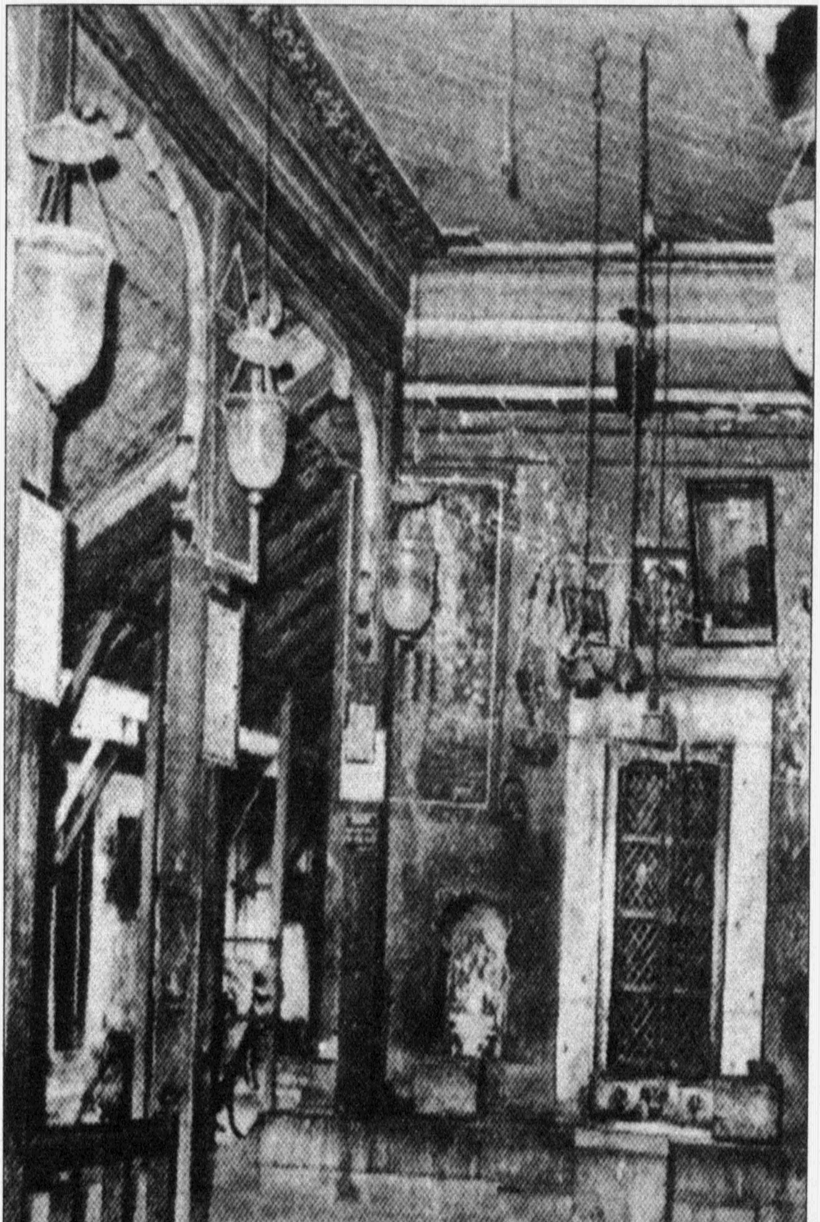

वासुदेव बलवंत की सायंकालीन बैठकें यहां होती थीं

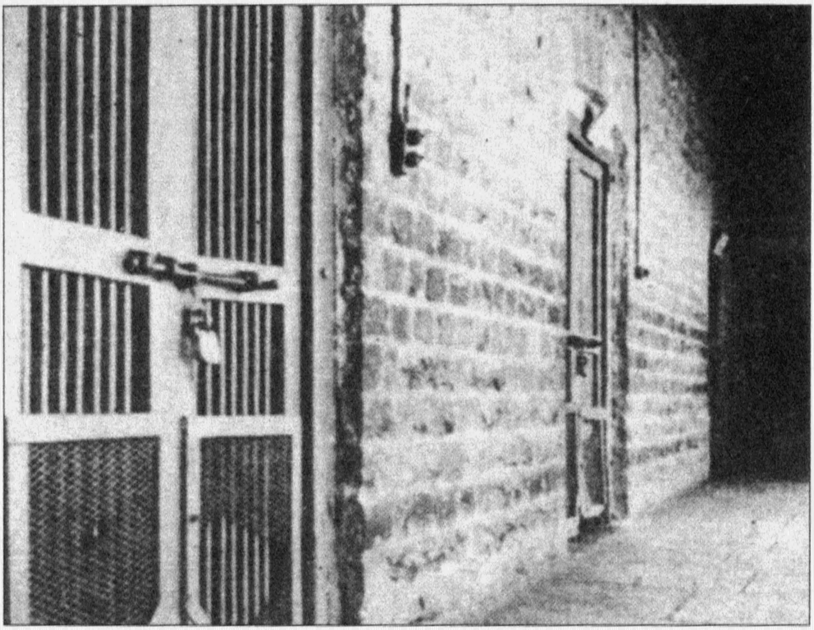

पुणे सिटी जेल के कक्ष जहां वासुदेव बलवंत के साथ अमानवीय व्यवहार हुआ

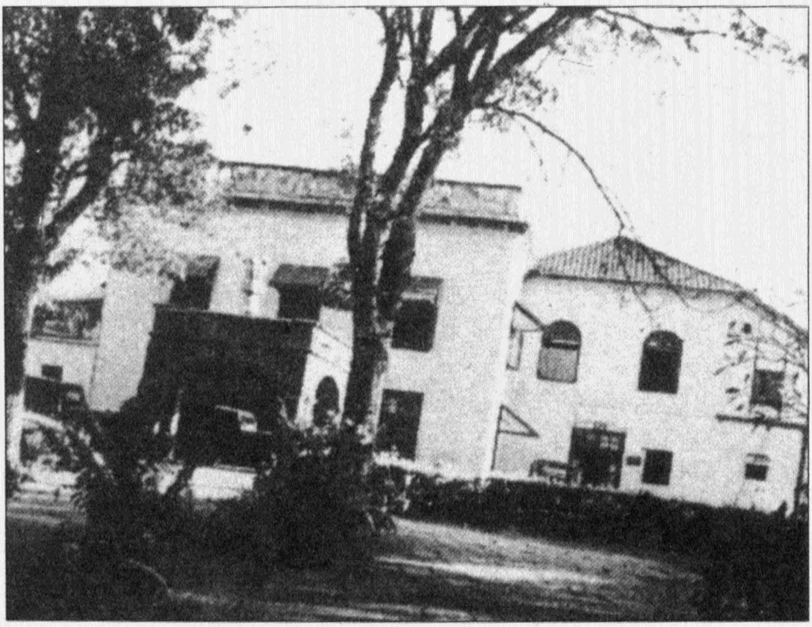

पुणे स्थित जिला मजिस्ट्रेट न्यायालय

महादेव चिम्नाजी आप्टे जिन्होंने सैशन कोर्ट में वासुदेव फड़के का समर्थन किया

चिन्तामन पांडुरंग जिन्होंने सैशन कोर्ट में फड़के के बचाव में सहायता की

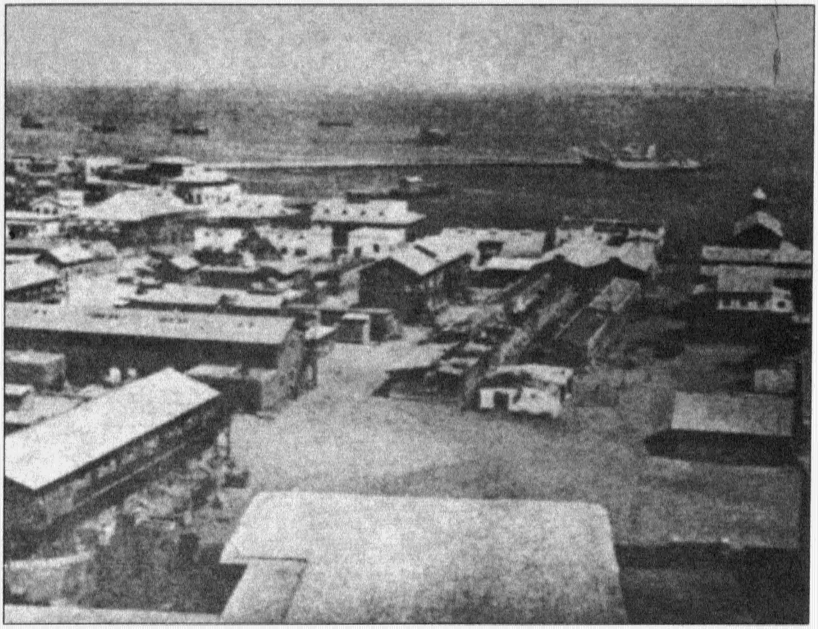

अदन बंदरगाह

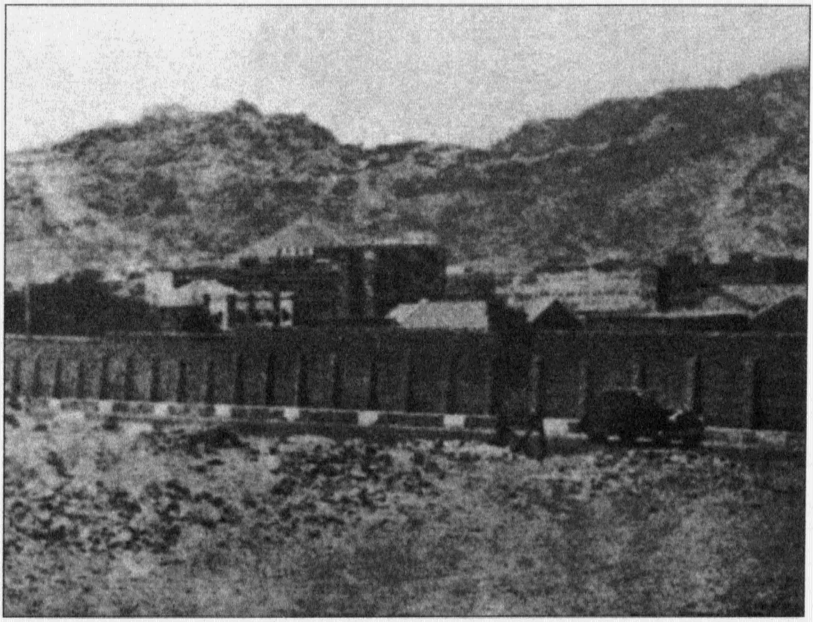

अदन जेल जहां वासुदेव बलवंत फड़के को कैद रखा गया और यहीं 17 फरवरी, 1883 को उनका निधन हो गया

शिरधों स्थित स्मारक स्तम्भ